

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 26: यमलोक के प्रदेश

22 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



पृथ्वी के नीचे दक्षिण दिशा में, दिवंगत आत्माओं के अधिपति महाभाग यमराज एक गम्भीर, मुकुटधारी न्यायाधीश के रूप में अपने लेखक के साथ विराजमान हैं, प्रत्येक आत्मा को उसके कर्मों के ठीक अनुरूप दण्ड देते हुए — कभी सर्वशक्तिमान् भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण न करते हुए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। यह छब्बीसवाँ अध्याय पंचम स्कन्ध का अन्तिम अध्याय है, और इसमें श्रीशुक सृष्टि का अपना महान् मानचित्र पूर्ण करते हैं। राजा परीक्षित को पृथ्वी तथा ऊपर और नीचे के लोक दिखा चुकने के पश्चात्, वे अब एक वैद्य की सरल करुणा के साथ उन गन्तव्यों की ओर मुड़ते हैं जो मृत्यु के पश्चात् आत्मा की प्रतीक्षा करते हैं — तीन गुणों का त्रिविध फल, वह दक्षिण-प्रदेश जहाँ दिवंगतों का न्याय होता है, और वे अनेक लेखा-प्रदेश जिनसे अधर्मी को होकर जाना पड़ता है। यह सब वे भयभीत करने को नहीं, अपितु हृदय को घर की ओर मोड़ने को कहते हैं; और वे समूचे स्कन्ध का समापन इस प्रकाशन से करते हैं कि यह विशाल ब्रह्माण्ड स्वयं भगवान् नारायण का स्थूल रूप है, और जो उनकी शरण लेते हैं वे इस सबसे परे ले जाए जाते हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 26 (छब्बीसवाँ अध्याय) — पंचम स्कन्ध का अन्तिम अध्याय
- अध्याय-शीर्षक: कर्म के फल और यमलोक के प्रदेश
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को उत्तर देते हुए; बाह्य कथा-रूप में यह संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को सुनाया जाता है
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: सृष्टि का वर्णन — यहाँ, ब्रह्माण्ड के भीतर दक्षिण दिशा, पृथ्वी के नीचे और जल के ऊपर, यम तथा पितरों का निवास
- केन्द्रीय विषय: किस प्रकार आत्माओं के गन्तव्य तीन गुणों और श्रद्धा के अनुसार भिन्न होते हैं; वह दक्षिण-प्रदेश जहाँ यम दिवंगतों का न्याय करते हैं; अट्ठाईस लेखा-प्रदेश और उन तक ले जाने वाले कर्म; और अन्त में यह दर्शन कि यह ब्रह्माण्ड भगवान् का ही स्थूल रूप है, जिससे उनके भक्त पूर्णतया मुक्त हैं
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 26, श्लोक 1–40
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय से

पच्चीसवें अध्याय में, श्रीशुक ने भगवान् अनन्त की महिमा गाई, जो संकर्षण-रूप में परम प्रभु हैं और जो पाताल के भी नीचे रहकर समस्त पृथ्वी को अपने असंख्य फणों में से एक पर धूल के कण के समान धारण किए हुए हैं। उन्होंने उस असीम भगवान् के प्रति देवर्षि नारद की प्रेममयी स्तुति का वर्णन किया, जिनकी महिमा कोई शब्द नाप नहीं सकते। पृथ्वी के नीचे के लोकों और उन्हें धारण करने वाले भगवान् की महत्ता से राजा को होकर ले जाने के पश्चात्, श्रीशुक अब सृष्टि के अपने विवरण को उसके समापन तक लाते हैं।

राजा का प्रश्न

श्रीशुक द्वारा प्रकट किए गए विशाल और विविध क्रम को देखकर, राजा परीक्षित ने पूछा कि संसार की यह विचित्रता — प्राणियों को प्राप्त होने वाली दशाओं और गन्तव्यों की अनन्त विविधता — किस प्रकार समझी जाए। यही वह प्रश्न है जो प्रत्येक विचारशील हृदय पूछता है: प्राणियों के मार्ग इतने अधिक भिन्न क्यों होते हैं, कोई ऊपर उठता और कोई नीचे गिरता?

राजोवाच

महर्ष एतद्वैचित्त्र्यं लोकस्य कथमिति ॥ १ ॥

rājovāca maharṣa etad vaicitryaṁ lokasya katham iti.

अर्थ: राजा ने कहा: हे महर्षि, संसार की यह अनन्त विविधता किस प्रकार समझी जाए? (स्कन्ध 5, अध्याय 26, श्लोक 1)



सिंहासनासीन राजा परीक्षित के समक्ष बैठे, ऋषि श्रीशुक एक वैद्य की शान्त करुणा से उत्तर देते हैं, आत्मा की प्रतीक्षा करने वाले गन्तव्यों का अपना विवरण आरम्भ करते हुए (श्लोक 1-3)।

तीन गुणों का त्रिविध फल

श्रीशुक ने उत्तर दिया कि कर्ता सदा प्रकृति के तीन गुणों में से किसी एक के वश में रहता है, और उसकी श्रद्धा भी तीन प्रकार की होती है — सात्त्विक, राजसिक या तामसिक — उस गुण के अनुसार जो उस पर शासन करता है। इसी कारण, कर्म से प्राप्त गन्तव्य व्यक्ति-व्यक्ति में भिन्न होते हैं, और वस्तुतः प्रत्येक आत्मा भिन्न-भिन्न समयों पर उन सबका न्यूनाधिक रूप से स्वाद लेती है; और ठीक इसी प्रकार, निषिद्ध कर्म का फल भी उसके पीछे की श्रद्धा के अनुसार भिन्न होता है। इसलिए वे उन सहस्रों दशाओं में से अधिक प्रमुख का वर्णन करेंगे, जो भगवान् द्वारा नियत हैं और जो उन लोगों के पापों से उत्पन्न होती हैं जो अनादि अविद्या के वश में अपनी कामनाओं के पीछे भागते हैं।

ऋषिरुवाच

त्रिगुणत्वात्कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥ २ ॥

ṛṣir uvāca tri-guṇatvāt kartuḥ śraddhayā karma-gatayaḥ pṛthag-vidhāḥ sarvā eva sarvasya tāratamyena bhavanti.

अर्थ: ऋषि ने कहा: क्योंकि कर्ता तीन गुणों के वश में रहता है, और क्योंकि उसकी श्रद्धा भी उन्हीं के अनुरूप होती है, इसलिए कर्म से प्राप्त गन्तव्य अनेक प्रकार के होते हैं; और इन सबको प्रत्येक व्यक्ति न्यूनाधिक मात्रा में प्राप्त करता है। (स्कन्ध 5, अध्याय 26, श्लोक 2)



प्रकृति के तीन गुण आत्मा के समक्ष तीन देदीप्यमान मार्गों के रूप में खुलते हैं, प्रत्येक कर्ता को, उसकी श्रद्धा के अनुसार, एक भिन्न गन्तव्य की ओर खींचते हुए (श्लोक 2)।

दक्षिण-प्रदेश और यम की सभा

तब परीक्षित ने पूछा कि क्या ये दुःख-प्रदेश पृथ्वी के तल पर कोई विशेष स्थान हैं, अथवा ब्रह्माण्ड के आवरण के बाहर हैं, या उसके भीतर कहीं। श्रीशुक ने उत्तर दिया कि वे इसी ब्रह्माण्ड के भीतर, पृथ्वी के नीचे और जल के ऊपर, दक्षिण दिशा में स्थित हैं। वहाँ पितरों के समूह — अग्निष्वात्त आदि — निवास करते हैं, जो भगवान् का चिन्तन करते और पृथ्वी पर रहने वाले अपने वंशजों पर केवल सच्चे आशीर्वाद की याचना करते हैं। और वहीं महाभाग यम विराजते हैं, सूर्यदेव के पुत्र और दिवंगतों के अधिपति, जो अपने अनुचरों के साथ अपने लोक में लाई गई आत्माओं को ग्रहण करते और प्रत्येक को उसके कर्मों के ठीक अनुरूप दण्ड देते हैं। वे कोई अत्याचारी नहीं; वे न दुष्टों पर कृपा दिखाते हैं और न योग्य से अधिक दण्ड देते हैं, और वे कभी सर्वशक्तिमान् भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते।

यत्र ह वाव भगवान् पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जन्तुषु सम्परेतेषु यथाकर्माविद्यं दोषमेवानुल्लङ्घितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ॥ ६ ॥

yatra ha vāva bhagavān pitṛ-rājo vaivasvataḥ sva-viśayaṁ prāpitesu sva-puruṣair jantuṣu sampareteṣu yathā-karmāvadyaṁ doṣam evānullaṅghita-bhagavac-chāsanāḥ sagaṇo damaṁ dhārayati.

अर्थ: वहाँ महाभाग यम, पितरों के अधिपति और सूर्यदेव के पुत्र, अपने अनुचरों सहित, अपने समक्ष लाई गई दिवंगत आत्माओं को उनके कर्मों के ठीक अनुसार दण्ड देते हैं, कभी सर्वशक्तिमान् भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन न करते हुए। (स्कन्ध 5, अध्याय 26, श्लोक 6)

यम की सभा को भगवान् की करुणा से पृथक् कोई प्रतिशोध-तन्त्र मान लेना भूल होगी। श्रीशुक स्पष्ट करते हैं कि स्वयं यम का अधिकार भी बँधा हुआ है: वे उस विधान के अन्तर्गत ही दण्ड देते हैं जिसे उन्होंने स्वयं नहीं रचा (श्लोक 6), और यह केवल बद्ध आत्माओं के कल्याण के लिए है, अपनी इच्छा से नहीं। आगे आने वाला प्रत्येक दण्ड इसलिए भगवान् का क्रोध नहीं, अपितु उनकी करुणामयी सुधार-प्रक्रिया है, जो भूली हुई आत्मा को पुनः उनकी ओर मोड़ने के लिए है। किन्तु श्रीशुक की कथा में एक मौन चेतावनी भी छिपी है: तीन गुणों और स्वयं अपनी श्रद्धा से बँधी हुई (श्लोक 2), वही आत्मा दण्ड भोगकर पृथ्वी पर लौटने पर पुनः वही पाप करने लगती है (श्लोक 37) — यह प्रमाण कि दण्ड मात्र से वह हृदय शुद्ध नहीं होता जो अभी मुड़ा ही नहीं। इसी कारण यह अध्याय अन्ततः यम से भयभीत होने की नहीं, अपितु दण्ड की आवश्यकता उत्पन्न होने से पहले ही भगवान् की शरण लेने के सरल मार्ग की शिक्षा है।

अट्ठाईस लेखा-प्रदेश

श्रीशुक ने कहा कि कुछ विद्वान् यम के लोक के प्रदेशों को इक्कीस गिनते हैं; और वे राजा के लिए उन्हें क्रम से, उनके नाम, स्वरूप और उन तक ले जाने वाले कर्मों सहित, बताएँगे। उन्होंने उन्हें एक-एक कर नाम दिया — तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्तसूर्मि, वज्रकण्टक-शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि और अयःपान — और, सात और जोड़ते हुए, क्षारकर्दम, रक्षोगण-भोजन, शूलप्रोत, दन्दशूक, अवट-निरोधन, पर्यावर्तन और सूचीमुख, उन्होंने कुल संख्या अट्ठाईस कर दी।

तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राजन्नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामस्तामिस्रोऽन्धतामिस्रो रौरवो महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमन्धकूपः कृमिभोजनः सन्दंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकण्टकशाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयःपानमिति । किञ्च क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दन्दशूकोऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिर्नरका विविधयातनाभूमयः ॥ ७ ॥

tatra haikē narakān eka-vimśatiṁ gaṇayanti atha tāṁs te rājan nāma-rūpa-lakṣaṇato 'nukramiṣyāmas tāmistro 'ndhatāmisro rauravo mahārauravaḥ kumbhīpākaḥ kālasūtram asipatravanaṁ sūkaramukham andhakūpaḥ kṛmibhojanaḥ sandaṁśas taptasūrmir vajraṇṭaka-śālmālī vaitaraṇī pūyodaḥ prāṇarodho viśasanaṁ lālābhakṣaḥ sārameyādanam avīcir ayaḥpānam iti; kiñca kṣārakardamo rakṣogaṇa-bhojanaḥ śūlaproto dandaśūko 'vaṭa-nirodhaṇaḥ paryāvartanaḥ sūcīmukham ity aṣṭā-vimśatir narakā vividha-yātanā-bhūmayāḥ.

अर्थ: कुछ लोग इन प्रदेशों को इक्कीस गिनते हैं; किन्तु, हे राजन्, मैं उन्हें क्रम से नाम, स्वरूप और स्वभाव के अनुसार बताऊँगा — तामिस और अन्धतामिस से आरम्भ करते हुए — और, उस पहली संख्या से सात अधिक गिनते हुए, वे कुल अट्ठाईस प्रदेश हैं, वे स्थान जहाँ विविध प्रकार के दुःख भोगे जाते हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 26, श्लोक 7)



पृथ्वी के नीचे और जल के ऊपर, दक्षिण दिशा में, यम के लोक के अट्ठाईस प्रदेश एक व्यवस्थित, प्रकाशमान लेखा-मानचित्र के समान विन्यस्त हैं (श्लोक 6-7)।

वे कर्म जो वहाँ ले जाते हैं

तब गम्भीर कोमलता से श्रीशुक ने बताया कि कौन-से कर्म आत्मा को प्रत्येक प्रदेश तक ले जाते हैं — क्योंकि भागवत इन स्थानों का नाम केवल इसलिए लेता है कि हम उनके पीछे के कर्मों को त्यागना सीखें। जो बल या छल से दूसरे का धन, सन्तान या पत्नी हर लेता है वह तामिस को ले जाया जाता है; और जो किसी के पति को धोखा देकर उसकी पत्नी आदि का उपभोग करता है वह अन्धतामिस में गिरता है, वह प्रदेश जो अन्धकार से भरा है। जो केवल अपने परिवार को अन्य प्राणियों के प्रति द्वेष से पालता है, देह को ही आत्मा मानते हुए, वह रौरव को आता है, जहाँ वही प्राणी जिन्हें उसने हानि पहुँचाई थी उस पर टूट पड़ते हैं; और जो दूसरों से द्वेष करते हुए केवल अपनी ही देह पोसता है वह महारौरव को पहुँचता है। जो इतना क्रूर है कि पशु-पक्षियों को जीवित पकाता है वह कुम्भीपाक में डाला जाता है, और जो अपने पिता, किसी ब्राह्मण, या वेदों से द्वेष करता है वह कालसूत्र में उतरता है।

जो आपत्काल के अतिरिक्त शास्त्र-निर्दिष्ट मार्ग को त्यागकर किसी मिथ्या मत को ग्रहण करता है वह असिपत्रवन को आता है, तलवार-सी पत्तियों वाले वृक्षों का वन; और जो राजा या अधिकारी निर्दोष को दण्ड देता है या किसी ब्राह्मण को शारीरिक दण्ड देता है वह सूकरमुख में गिरता है। जो उन छोटे प्राणियों को सताता है जिनका जीवन स्वयं भगवान् ने नियत किया है वह अन्धकूप को ले जाया जाता है, और जो अतिथि तथा आश्रितों के साथ पहले बाँटे बिना और पाँच दैनिक यज्ञ किए बिना खाता है वह कृमिभोजन में कृमि बनकर जन्म लेता है। जो किसी ब्राह्मण का स्वर्ण या रत्न चुराता है वह सन्दंश को पहुँचता है; जो किसी अयोग्य के साथ अवैध रूप से मिलते हैं वे तप्तसूर्मि को लाए जाते हैं; और जो पूर्णतया अविवेकी काम में डूबता है वह वज्रकण्टक-शाल्मली को आता है।

और भी प्रदेश तथा उनके कारण

श्रीशुक आगे बढ़े। जो शासक और अधिकारी, वैदिक धर्म का पालन करते हुए भी, उसकी मर्यादाओं को रौंदते हैं, वे मृत्यु पर उस वैतरणी नदी में गिरते हैं जो इन प्रदेशों की सीमा बनाती है। जो समस्त पवित्रता त्यागकर पशु के समान निर्लज्ज जीवन जीता है वह पूयोद को लाया जाता है; और जो कुत्ते-गधे पालकर शिकार में रमते और शास्त्र-विधि के विरुद्ध पशुओं को मारते हैं वे प्राणरोध को आते हैं। जो ढोंगी दिखावे के लिए किए गए यज्ञों में प्राणियों का वध करते हैं वे विशसन को पहुँचते हैं, और जो द्विज काम से अन्धा होकर अपनी ही पत्नी को अपमानित करता है वह लालाभक्ष में डाला जाता है। जो डाकू, या राजा और सैनिक, अग्नि और विष से गाँवों और यात्रा करते व्यापारियों को लूटते हैं वे सारमेयादन को दिए जाते हैं, जहाँ यम के अपने दूतरूप श्वान उन पर टूट पड़ते हैं; और जो साक्षी देते समय, व्यापार में, या दान करते समय झूठ बोलता है वह अवीचि में फेंका जाता है, जिसका पथरीला तल केवल जल-सा प्रतीत होता है।

जो ब्राह्मण, उसकी पत्नी, या कोई व्रतधारी मदिरा पीता है, और जो क्षत्रिय या वैश्य अनुचित रूप से सोम-रस पीता है, वे अयःपान को ले जाए जाते हैं। जो नीच स्थिति का व्यक्ति मात्र अहंकार से अपने से श्रेष्ठों का आदर करने से मना करता है वह क्षारकर्दम को आता है। जो भद्रकाली या भैरव को मनुष्यों की बलि देते हैं, और वे स्त्रियाँ जो ऐसे कर्मों में सम्मिलित होती हैं, वे रक्षोगण-भोजन को पहुँचते हैं; जो क्रूर विनोद के लिए निर्दोष प्राणियों को सताते और बींथते हैं वे शूलप्रोत को लाए जाते हैं; और जो सर्प के समान उग्र होकर अन्य प्राणियों को सताते हैं वे दन्दशूक को आते हैं। जो प्राणियों को अन्धेरे गड्ढों, कोठारों और गुफाओं में बन्द करते हैं वे अवट-निरोधन में रुद्ध किए जाते हैं; जो क्रोधी गृहस्थ अपने अतिथियों को जलती, विद्वेषपूर्ण दृष्टि से देखता है वह पर्यावर्तन को ले जाया जाता है; और जो अपने धन के मद में और अहंकार से भरकर सबका अविश्वास करता और अपने कोष को पिशाच के समान रखता है, उसे कमाने और बचाने में पाप करता हुआ, वह अन्ततः सूचीमुख को आता है। प्रत्येक में, फल कर्म के ठीक अनुरूप उत्तर देता है — भगवान् का न्याय कभी भूल नहीं करता, और कभी क्रूर नहीं होता।

दोनों मार्ग भारतवर्ष लौटते हैं

श्रीशुक ने कहा कि यम के लोक में ऐसे सैकड़ों-हज़ारों स्थान हैं; और जो सब अधर्म के मार्ग पर चलते हैं — चाहे श्रीशुक ने उनका नाम लिया हो या अनकहा छोड़ा हो — वे सब बारी-बारी उनसे होकर जाते हैं। ठीक इसी प्रकार, जो धर्म के मार्ग पर चलते हैं वे स्वर्गादि उच्च लोकों में उठते हैं। फिर भी कोई भी गन्तव्य अन्त नहीं है: जब फल का बड़ा भाग भोग लिया जाता है, तब पुण्यात्मा और पापी दोनों, अपने कर्मों के शेष से युक्त होकर, इस भारतवर्ष की भूमि पर, पुनर्जन्म के क्षेत्र में, फिर लौट आते हैं। स्वर्ग और उसका विपरीत दोनों समान रूप से क्षणभंगुर हैं; केवल भगवान् की शरण ही आत्मा को लौटने से परे ले जाती है।

एवंविधा नरका यमालये सन्ति शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चावनिपते पर्यायेण विशन्ति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु पुनर्भवे त उभयशेषाभ्यां निविशन्ति ॥ ३७ ॥

evam-vidhā narakā yamālaye santi śataśaḥ sahasraśas teṣu sarveṣu ca sarva evādharmavartino ye kecid ihoditā anuditāś cāvani-pate paryāyeṇa viśanti tathaiva dharmānuvartina itaratra iha tu punar-bhave ta ubhaya-śeṣābhyāṁ nivīśanti.

अर्थ: हे राजन्, यमराज के इस अधिकार-क्षेत्र में इतने ही प्रकार के सैकड़ों-हज़ारों प्रदेश हैं, और चाहे नाम ली गई हों या न ली गई हों, समस्त अधर्मी आत्माएँ बारी-बारी उनमें प्रवेश करती हैं; धर्म का पालन करने वाले उसी क्रम से अन्यत्र, उच्च लोकों में जाते हैं। किन्तु दोनों ही दशाओं में, अपने-अपने कर्म-फल के शेषांश के साथ, आत्माएँ इस पृथ्वी पर पुनः जन्म लेने के लिए लौट आती हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 26, श्लोक 37)

ब्रह्माण्ड भगवान् का ही रूप

तब श्रीशुक ने समूचे विवरण को उसकी सच्ची ऊँचाई तक उठाया। निवृत्ति का मार्ग — सांसारिक कर्म से वह विमुखता जो अन्ततः मुक्ति की ओर ले जाती है — उन्होंने पहले वर्णित किया था। जो कुछ उन्होंने प्रकट किया, देदीप्यमान लोकों से लेकर नीचे के प्रदेशों तक, वह केवल इस अण्डाकार ब्रह्माण्ड की सीमा है, जिसे पुराण चौदह लोकों में विभक्त बताते हैं। और यह समूचा ब्रह्माण्ड, उन्होंने प्रकट किया, परम पुरुष भगवान् नारायण का ही स्थूलतम, सर्वाधिक प्रसिद्ध रूप है, जो उनकी अपनी माया के तीन गुणों से बना है। जो कोई श्रद्धा से पूर्ण होकर इस विवरण को पढ़ता, सुनता, या दूसरे को सुनाता है, उसका मन श्रद्धा और भक्ति से शुद्ध हो जाता है, और वह परमात्मा के उस सूक्ष्म, अगोचर स्वरूप को भी जान लेता है जो उपनिषदों का विषय है।

निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेव व्याख्यातः । एतावानेवाण्डकोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत्तद्भगवतो नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपमात्ममायागुणमयमनुवर्णितमादृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनोऽग्राह्यमपि श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद ॥ ३८ ॥

nivṛtti-lakṣaṇa-mārga ādāv eva vyākhyātaḥ; etāvān evāṇḍa-kośo yaś caturdaśadhā purāṇeṣu vikalpita upagīyate yat tad bhagavato nārāyaṇasya sākṣān mahā-puruṣasya sthaviṣṭhaṁ rūpam ātmamāyā-guṇamayam anuvarṇitam ādṛtaḥ paṭhati śṛṇoti śrāvayati sa upageyaṁ bhagavataḥ paramātmāno 'grāhyam api śraddhā-bhakti-viśuddha-buddhir veda.

अर्थ: चौदह लोकों वाला यह अण्डाकार ब्रह्माण्ड, जैसा पुराणों में गाया गया है, परम पुरुष भगवान् नारायण का स्थूलतम प्रसिद्ध रूप है, जो उनकी अपनी माया के गुणों से बना है। जो श्रद्धापूर्वक इस विवरण को पढ़ता, सुनता या सुनाता है — उसका मन श्रद्धा और भक्ति से शुद्ध होकर — परम प्रभु के उस सूक्ष्म, अन्यथा अग्राह्य स्वरूप को भी जान लेता है। (स्कन्ध 5, अध्याय 26, श्लोक 38)



चौदह लोकों वाला समूचा अण्डाकार ब्रह्माण्ड परम प्रभु नारायण के स्थूलतम, सर्वाधिक प्रसिद्ध रूप के रूप में देदीप्यमान है, जो उनकी अपनी माया के तीन गुणों से बुना है
(श्लोक 38)।

भगवान् के स्थूल और सूक्ष्म दोनों स्वरूपों को सुन चुकने पर, श्रीशुक ने कहा, साधक को पहले अपने मन को स्थूल पर स्थिर करना चाहिए, और फिर, सूक्ष्मतर बुद्धि से, उसे कोमलता से सूक्ष्म पर टिकाना चाहिए। और इस प्रकार उन्होंने अपना महान् प्रवचन समापन तक लाया, यह घोषित करते हुए कि उन्होंने अब राजा के लिए समूचे व्यवस्थित ब्रह्माण्ड का वर्णन कर दिया है, जो सर्वशक्तिमान् भगवान् का अद्भुत स्थूल शरीर और प्रत्येक प्राणी का निवास-स्थान है।

भूद्वीपवर्षसरिदद्रिभःसमुद्र-

पातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था ।

गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य

स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥ ४० ॥

*bhū-dvīpa-varṣa-sarid-adri-nabhaḥ-samudra- pātāla-diṅ-naraka-bhāgaṇa-loka-saṁsthā gītā
mayā tava nṛpādbhutam īśvarasya sthūlaṁ vapuḥ sakala-jīva-nikāya-dhāma*

अर्थ: हे राजन्, मैंने आपको पृथ्वी और उसके प्रदेशों, नदियों और पर्वतों, आकाश, समुद्रों, पाताल-लोकों, दिशाओं, लेखा-प्रदेशों, तथा ज्योतियों और लोकों की व्यवस्था बताई — यह भगवान् का अद्भुत स्थूल शरीर है, समस्त प्राणियों का निवास। (स्कन्ध 5, अध्याय 26, श्लोक 40)



प्रत्येक लेखा-प्रदेश से मुक्त, भगवान् के भक्त देदीप्यमान खड़े हैं, उनके पवित्र नामों का कीर्तन करते हुए — क्योंकि जो नारायण की शरण लेते हैं वे इन सब मार्गों से परे ले जाए जाते हैं (श्लोक 38-40)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

हमारा गन्तव्य उस गुण और श्रद्धा का अनुसरण करता है जो हमें चलाते हैं। संसार की विविधता कोई संयोग नहीं: आत्मा उस गुण के अनुसार खिंचती है जो उसके हृदय पर शासन करता है, और उसकी श्रद्धा भी वही रंग ले लेती है। भक्ति से अपनी श्रद्धा को शुद्ध करना ही अपनी यात्रा की दिशा बदल देना है।

भगवान् का न्याय ठीक है, कभी क्रूर नहीं। यम कर्म के योग्य से न अधिक देते हैं न कम, और कभी भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते। समूचे लेखा-क्रम के पीछे कोई अत्याचारी नहीं, अपितु एक पूर्ण, निष्पक्ष विधान खड़ा है — जिससे हम उसी क्षण मुक्त हो जाते हैं जब भगवान् की ओर मुड़ते हैं।

यह शिक्षा करुणा से दी गई है, एक चेतावनी के रूप में। भागवत दुःख-प्रदेशों और उन तक ले जाने वाले कर्मों का नाम इसलिए लेता है कि हम उन्हें पहचानकर त्याग सकें — क्रूरता, छल, चोरी, अश्रद्धा, लोभ और अहंकार। यह अन्धकारमय मार्ग पर उठाया गया दीपक है, हमें भयभीत करने को नहीं, अपितु हमारे पग को दिशा देने को।

स्वर्ग और उसका विपरीत दोनों क्षणभंगुर हैं। पुण्य आत्मा को उच्च लोकों तक उठाता और पाप उसे नीचे गिराता है, फिर भी दोनों, फल भोग लेने पर, पुनर्जन्म के क्षेत्र में लौट आते हैं। केवल भगवान् की शरण ही इस अनन्त चक्र को समाप्त करती है।

समूचा ब्रह्माण्ड भगवान् का ही रूप है, और इसका श्रवण शुद्ध करता है। यह विशाल ब्रह्माण्ड, उच्चतम लोक से लेकर निम्नतम प्रदेश तक, नारायण का स्थूल शरीर है। इस पावन विवरण को श्रद्धा से सुनना या सुनाना मन को शुद्ध करता और हृदय को उनकी अमर उपस्थिति के प्रति खोलता है।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

इस प्रकार के अध्याय को पढ़कर केवल भय अनुभव करना सरल होगा, किन्तु यह वह भाव नहीं जिसमें श्रीशुक बोलते हैं। वे एक स्नेही वैद्य के समान हैं जो प्रत्येक संकट का नाम स्पष्ट रूप से लेते हैं, हमें आहत करने को नहीं, अपितु इसलिए कि वे हमें स्वस्थ चाहते हैं। जिस प्रत्येक प्रदेश का वे वर्णन करते हैं, वह एक ही भूल की छाया है — भगवान् को भुलाकर संकीर्ण स्वयं के लिए जीना, अपने चारों ओर के प्राणियों के प्रति निर्दय होना, और जो अपना नहीं उसे पकड़ना। और इन सबसे हृदय के उसी सरल मोड़ से बचा जा सकता है: नारायण की शरण लेना, उनका स्मरण करना, सबमें उन्हें देखना। हमें सबसे अधिक जो द्रवित करता है वह यह है कि अध्याय अन्ततः कहाँ विश्राम पाता है। लेखा की उस लम्बी सूची के पश्चात्, श्रीशुक हमारी दृष्टि समूचे ब्रह्माण्ड की ओर उठाते हैं और दिखाते हैं कि वह भगवान् का ही शरीर है, और उसे भक्ति से सुनना ही शुद्ध करने वाला है — यही भागवत की करुणा है, जिसकी कठोरतम चेतावनी भी हमें घर बुलाने का ही एक और उपाय है।

एक दैनिक भक्ति-साधना

आज, इस अध्याय के हृदय को एक कोमल संकल्प का रूप देने दीजिए: इस प्रकार जीना कि किसी प्राणी को हानि न पहुँचे और उसे न पकड़ें जो सचमुच अपना नहीं है। किसी प्राणी के प्रति एक छोटा-सा दयालु कर्म चुनिए — कोई पक्षी, कोई पशु, कोई ज़रूरतमन्द व्यक्ति — और उसे भगवान् को अर्पित कीजिए। और एक बार, मौन में, पंचम स्कन्ध के इस अन्तिम सत्य को पढ़िए या धीरे से दोहराइए: कि समूचा ब्रह्माण्ड नारायण का रूप है, और उनके भक्त प्रत्येक लेखा-प्रदेश से परे ले जाए जाते हैं। ऐसा करते हुए मन ही मन कहिए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” इसमें, अध्याय का श्रवण ही, जैसा श्रीशुक ने वचन दिया, मन की शुद्धि और आत्मा का भगवान् की ओर मुड़ना बन जाता है।

उपसंहार

छब्बीसवाँ अध्याय पंचम स्कन्ध को उसके समापन तक लाता है और श्रीशुक के सृष्टि-दर्शन को पूर्ण करता है। राजा परीक्षित के प्रश्न का उत्तर देते हुए, उन्होंने स्पष्ट किया कि आत्मा की गति तीन गुणों और उसकी अपनी श्रद्धा के साथ किस तरह बदलती रहती है, और यह भी कि, ब्रह्माण्ड के भीतर दक्षिण दिशा में, महाभाग यम दिवंगतों का न्याय उनके कर्मों के ठीक अनुरूप और भगवान् की इच्छा से पूर्णतया बँधे न्याय से करते हैं। उन्होंने अट्ठाईस लेखा-प्रदेशों का और, करुणावश, उन तक ले जाने वाले कर्मों का नाम लिया — कि हम क्रूरता, छल और लोभ को त्यागना सीखें। उन्होंने स्मरण कराया कि स्वर्ग भी क्षणभंगुर है, और पुण्यात्मा तथा पापी समान रूप से पुनर्जन्म के लिए लौटते हैं, जब तक आत्मा भगवान् की स्थायी शरण न ले ले। और उन्होंने समूचे विवरण को उसके शिखर तक उठाया, यह प्रकट करते हुए कि यह समग्र ब्रह्माण्ड भगवान् नारायण का स्थूल रूप है, और जो कोई इस पावन विवरण को श्रद्धा से सुनता या सुनाता है वह शुद्ध होकर भगवान् की अमर उपस्थिति की ओर खिंच जाता है। इस प्रकार पंचम स्कन्ध वहीं समाप्त होता है जहाँ समस्त सच्ची विद्या समाप्त होती है — परम प्रभु की शरण में, प्रत्येक लौटने के मार्ग से परे।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, पंचम स्कन्ध, छब्बीसवाँ अध्याय, “A description of the infernal regions।”
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-26-regions-of-reckoning-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

